**ओ३म्**

**‘लोकभाषा हिन्दी में धर्म प्रचार करने वाले प्रथम धर्म प्रचारक स्वामी दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

सारा संसार जानता व मानता है कि ऋषि दयानन्द इतिहास वर्णित वेदों के विद्वानों में अपूर्व विद्वान थे। वह वेदों के विद्वान मात्र नहीं अपितु क्रियात्मक योग के सिद्ध अभ्यासी व उपासक भी थे। योग का उद्देश्य ईश्वर का ध्यान करते हुए समाधि अवस्था को प्राप्त कर ईश्वर का साक्षात्कार करना होता है। उनके जीवन व साहित्य का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने समाधि तो प्राप्त की ही थी अपितु ईश्वर का समाधि अवस्था में साक्षात्कार भी किया हुआ था। महर्षि दयानन्द पहले सिद्ध योगी बने और उसके बाद मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरु विरजानन्द सरस्वती से संस्कृत के आर्ष व्याकरण अष्टाध्यायी-महाभाष्य पद्धति और वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन कर वेद सहित समस्त वैदिक साहित्य का यथार्थ आशय व अर्थ जानने व समझने वाले सच्चे विद्वान व ऋषि बने थे। इस योग्यता को प्राप्त करने के बाद परम्परागत भावी कर्तव्य तो यही था कि वह जीवन मुक्त अवस्था में रहकर योगाभ्यास करते हुए प्रातः सायं समाधि का अभ्यास करते हुए ईश्वर का साक्षात्कार करते रहते और मृत्यु होने पर मोक्ष अवस्था को प्राप्त कर लेते। देश व भावी पीढ़ी के सौभाग्य से स्वामी दयानन्द जी के गुरु ने उनका ऐसा मार्गदर्शन किया जिसने इन दोनों महापुरुषों को न केवल भारत अपितु विश्व के इतिहास में अमर कर दिया। गुरु विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द को प्रेरणा की कि वह अपनी विद्या का सदुपयोग देश से अविद्या व अधर्म के नाश के लिए करें। स्वामी दयानन्द जी ने इस प्रस्ताव के महत्व को समझकर इसे स्वीकार कर लिया और जीवनमुक्त अवस्था में रहकर देशहित के किसी भी कर्तव्य की उपेक्षा न कर अपने समाधि के दैवीय सुख को छोड़कर उन्होंने संसार से अधर्म व अविद्या दूर कर सत्य धर्म अर्थात् वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार का महनीय एवं अपूर्व कार्य किया। ऋषि दयानन्द जी ने पहले वेद धर्म के प्रचार का कार्य संस्कृत में भाषण व व्याख्यानों द्वारा आरम्भ किया था परन्तु संस्कृत के सीमित श्रोता व विद्वान होने के कारण उन्होंने ब्राह्म समाजी नेता केशव चन्द्र सेन के सुझाव के अनुसार वेद प्रचार के लिए देश भर में जानी व समझी जाने वाली भाषा हिन्दी को अपनाया। अपने जीवन का उद्देश्य वेद धर्म प्रचार को बनाना जिसमें यथार्थ ईश्वरोपासना एवं यज्ञ अग्निहोत्र सहित योगाभ्यास भी सम्मिलित है, उसके लिए ऋषि दयानन्द द्वारा हिन्दी भाषा का चयन करना उनका एक ऐसा निर्णय है जिससे देश व विश्व का आशातीत कल्याण हुआ।

महर्षि दयानन्द (1825-1883) के समय में देश में पौराणिक, पारसी, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम और सिख आदि प्रमुख मत प्रचलित थे। स्वामी जी ने पाया कि इन सभी मतों में वैदिक मत की अनेक शिक्षायें विद्यमान हैं और इसके साथ इनके मत-पंथ-धर्म ग्रन्थों में अनेक बातें ऐसी हैं जो अज्ञान, अन्धविश्वास व मिथ्या परम्पराओं पर आधारित हैं। इस कारण इन सभी मतों के अनुयायियों को यथेष्ठ लौक व आध्यात्मिक सुख सहित पारलौकिक उन्नति प्राप्त न होकर दुःख मिश्रित सुख ही सदैव प्राप्त होते हैं। वेद मर्मज्ञ आचार्य चाणक्य ने कहा है कि सुख का आधार धर्म है। जिस दुःखरहित सुख का आधार धर्म होता है वह मत-मतान्तरों वाला सुख नहीं होता, अपितु सत्य व ज्ञान युक्त कर्मों वाला धर्म व कर्तव्य से प्राप्त सुख होता है। यह सुख संसार में तर्क व युक्ति प्रमाण से सिद्ध वैदिक धर्म के आचरण से ही प्राप्त होता है। वैदिक धर्म का विस्तार व अनेक प्रकार के विधान वेद व वैदिक ग्रन्थों मनुस्मृति, दर्शन व उपनिषदों आदि में पाये जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने सर्वांगीण सत्य सनातन वैदिक धर्म की मान्यताओं, सिद्धान्तों व संस्कार विषयक विधानों का देश भर में घूम घूम कर प्रचार व प्रसार सन् 1863 से आरम्भ किया था। आगरा से प्रचार आरम्भ किया और आगे बढ़ते हुए देश के प्रायः सभी प्रान्तों में उन्होंने वेदों का प्रचार किया। यदि उन्हें और अधिक जीवन मिला होता तो वह देश के उन भागों में भी जाते जहां वह जा नहीं सके थे। समय आने पर देश के अन्य देशों में भी वैदिक धर्म का प्रचार करने अवश्य जाते परन्तु अपने ही स्वदेशीय बन्धुओं के ईष्या व द्वेष के कारण उनका 58-59 वर्ष की अवस्था में बलिदान वा देहान्त हो गया। भावी जीवन में वह अनेक ग्रन्थ लिखते जिनसे भारत के स्वर्णिम इतिहास पर विस्तार से प्रकाश पड़ता। भविष्य में उनके द्वारा विश्व सुधार का जो कार्य होना था वह अवरुद्ध हो गया जिससे विश्व की भारी क्षति हुई, यह हम अनुभव करते हैं।

महर्षि दयानन्द के धर्म प्रचार काल में देश में मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध सहित सामाजिक कुरीतियां, सामाजिक असमानता एव समाज के लोगों में जन्मना जातिवाद, छुआ-छूत वा अस्पर्शयता, ऊंच-नीच आदि भेदभाव, बाल विवाह, सतीप्रथा, बाल विधवाओं की दुर्दशा, बेमेल विवाह आदि प्रथायें एवं परम्परायें प्रचलित थी जिससे समाज सुदृण न होकर रूग्ण, बलहीन व प्रभावहीन हो गया था जिसका लाभ मुगल व अंग्रजों ने उठाया और देश को गुलाम बनायाा। महर्षि दयानन्द जानते थे कि देश को बलवान बनाने के लिए सभी अन्धविश्वासों को दूर कर सबको वैदिक मान्यताओं का अनुयायी बनाना होगा। ऐसा होने पर ही देश सुदृण होकर इसके देशवासी सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो सकते थे। इसी को अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर उन्होंने प्रचार किया। एक ओर जहां उन्होंने सत्य सनातन वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया वहीं दूसरी ओर सभी मतों की अवैदिक, अज्ञान पर आधारित, हानिकारण तथा अनावश्यक बातों पर प्रकाश डालकर उनका खण्डन किया। उनका कार्य ज्ञात इतिहास में अपूर्व वह देश व विश्व के हित की दृष्टि से सर्वोत्तम एवं उपादेय रहा। यदि सभी मत-मतान्तर के आचार्य उनसे सहयोग करते तो आज यह यह धरा वा पृथिवी शान्ति का धाम होती। सहयोग न करने और अपने अपने मत के अविद्याजन्य अनुपयोगी विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों के प्रचार, आचरण और विस्तार के कारण संसार में अशान्ति फैली हुई है। बिना एक मत, एक धर्म, एक भाषा, एक भाव, एक समान अविरुद्ध सोच व विचारधारा, एक सुख-दुख, ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ स्वरुप को जानकर उपासना आदि कर्तव्यों का पालन के बिना संसार में कभी भी सच्ची पूर्ण शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। इतर जितने भी कार्य किये जाते हैं वह सब मृग मरीचिका के समान हैं और ऋषि दयानन्द की संसार के दुःखों से मुक्ति की यथार्थ ओषधि के विपरीत व विरोधी हैं जो समाज व देश में अन्याय, पक्षपात व शोषण आदि को जन्म देते हैं व दे रहे हैं। आज भी संसार के सामने संसार में भात्त्व व मैत्रीभाव उत्पन्न करने में सबसे अधिक बाधक मत-मतान्तर ही हैं जिनके रहते, ऋषि के विचारों के अनुसार, सच्ची शान्ति, एकता व विश्व बन्धुत्व को स्थापित नहीं किया जा सकता।

ऋषि दयानन्द ने आरम्भ में संस्कृत में प्रचार किया और उसके बाद उन्होंने धर्म प्रचार को व्यापक बनाने के लिए देश में सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा हिन्दी, जिसे उन्होंने आर्यभाषा का नाम दिया, अपनाया। महाभारत काल के बाद के ज्ञात इतिहास में यह पहला अवसर था कि जब किसी वेदों के पारंगत व मर्मज्ञ विद्वान ने सृष्टि के आदिकालीन व प्राचीनतम वैदिक धर्म का संस्कृत भाषा के स्थान लोकभाषा हिन्दी में प्रचार किया। यही कारण था कि उन्हें अपने प्रचार में अपूर्व सफलता मिली। संसार का कोई ऐसा मत नहीं है कि जो अपने अनुयायियों को तर्क व युक्ति के प्रयोग व शंका समाधान का अधिकार देता हो। यह अधिकार केवल और केवल वैदिक मत में ही है। इसे दूसरे रुप में **‘सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहने’** का सिद्धान्त कह सकते हैं जिसे ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का चौथा नियम बनाया है। इस नियम के कारण आर्यसमाज संसार की अद्वितीय धार्मिक संस्था बन गई है। आर्यसमाज के वैदिक धर्मी सभी अनुयायी वेदों व धर्म के विषयों पर स्वतन्त्रतापूर्वक चिन्तन व मनन करते हुए सत्य की खोज करते है, परस्पर व विद्वानों से चर्चा कर सत्य को अपनाते एवं असत्य का त्याग करते हैं जिससे उनका बौद्धिक, आत्मिक व शारीरिक विकास होता है। महर्षि दयानन्द की देश व समाज को यह बहुत बड़ी देन है। उनकी देखा देखी ही सभी मतों ने एक सीमा तक विचार व चिन्तन को अपनाया है परन्तु वह अपने-अपने मत की सभी अवैज्ञानिक, असत्य, अनावश्यक, समाज व स़्त्री-पुरुषों के हितों की विरोधी मान्यताओं पर स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं विचार करने की स्वतन्त्रता अपने अनुयायियों को नहीं देते। ऋषि दयानन्द पहले ऐसे मत प्रचारक हुए हैं जिनकी सोच पूर्णतया विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित थी और उन्होंने वैदिक धर्म के सभी सिद्धान्तों को सत्य, तर्क व विज्ञान की कसौटी पर प्रतिष्ठित किया। उनके द्वारा लोक भाषा हिन्दी को अपनायें जाने से कोटि कोटि साधारण मनुष्यों का अपूर्व हित एवं कल्याण हुआ है। हम जैसे हिन्दी पठित साधारण व्यक्ति भी उनके हिन्दी के प्रचार से वेदों, मनुस्मृति, दर्शन व उपनिषदादि के मर्म को कुछ व अधिक सीमा तक जान सके हैं। इसके लिए महर्षि दयानन्द को नमन कर इन पंक्तियों को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, फोनः09412985121**